**आलेख**

# जनशिक्षा के पैरोकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर

निरंजन सहाय

**समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक है कि दलित और वंचित वर्ग को गरिमा और बराबरी का हक हासिल हो। भारतीय समाज में दलितों की उपेक्षा एक ऐतिहासिक तथ्य है। हमारे यहां लम्बे समय तक दलित चिंतन की अनदेखी हुई है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने समाज व्यवस्था के साथ शिक्षा व्यवस्था में भी बदलाव के लिए कार्य किया। यह लेख डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक चिन्तन की संक्षिप्त तस्वीर पेश करता है।**

भारतीय शिक्षा व्यवस्था जिस मुकाम पर खड़ी है, उसके विरोधाभासों और मन्तव्यों के पीछे उन सच्चाइयों की अनदेखी है जिसे गुलाम भारत में स्वाधीनता के अनेक स्वप्नदृष्टाओं ने देखा था। पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था के बरक्स लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था के प्रति जिन विचारकों ने अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की, उसके दलित-शोषित पक्ष की ओर ध्यान देने वाले विचारकों में ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु और भीमराव अम्बेडकर का नाम सर्वोपरि है। हंटर कमीशन को भेजे गए ज्ञापन में शिक्षा के जिन लोकतांत्रिक मूल्यों की ओर महात्मा फुले ने ध्यान आकृष्ट किया था, वह इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इस धारा की अगली कड़ी यानी हाशिए के समाज की चिंता को आगे बढ़ाने वाले दूसरे उल्लेखनीय विचारक हैं- अम्बेडकर। हम ऐसा कह सकते हैं कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारत के ऐसे विचारक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने वर्चस्व प्रेरित शिक्षा की असलियत को न सिर्फ बेनकाब किया बल्कि भारतीय शिक्षा में आमूल-चूल बदलाव कैसे संभव है, इस मुद्दे पर ठोस ढंग से विचार किया।

**लेखक परिचय**

शिक्षा, समाज और संस्कृति के अंतर्संबंधों पर पिछले एक दशक से लेखनरत हैं। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी पद पर कार्यरत हैं। एनसीईआरटी दिल्ली एवं बिहार और राजस्थान सरकार के लिए विभिन्न शैक्षिक सामग्रियों का संपादन और लेखन किया है।

भारतीय राष्ट्रवाद की प्रचलित अवधारणा में प्रायः दलित-आदिवासी स्वरों की अनदेखी की गई। यानी एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की गई जिसकी बुनियाद में सवर्णहित की परिकल्पना को स्थापित करने की रणनीतियां सक्रिय थीं। ऐसी रणनीतियों को अमली जामा पहनाने के लिए राष्ट्र निर्माण के दलित स्वरों की प्रायः अनदेखी की गई। यह अकारण नहीं है कि हाल तक पाठ्यचर्याओं, पाठ्यपुस्तकों, सवालों के निर्माण आदि में दलित हितों की अनदेखी नजर आई। यह अलग बात है कि 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005' और उसके लिए बने आधार पत्रों में ऐसी चिंताएं मुखर होना शुरू हो गईं।

दलित-आदिवासी उत्पीड़न के विभिन्न संदर्भों ने भारतीय राष्ट्र की जो छवि बनाई उसकी व्याख्याएं परस्पर विरोधी रूपों में हुई। एक व्याख्या वह थी जिसने वर्णवाद, पुनर्जन्म के आलोक में और तथाकथित महान परंपराओं के वारिस के रूप में भारत की छवि को समझा। दूसरी व्याख्या वह थी, जिसने इन अवधारणाओं की असली मंशा यानी सवर्णहित की चतुराइयों को बेनकाब किया। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय राष्ट्र की पुनर्व्याख्या की जाए और अभिजनवादी स्थापनाओं के समानांतर हाशिए के समाज या दलित संदर्भों की हकीकतों से रूबरू हुआ जाए। डॉ. भीमराव अम्बेडकर इसी अर्थ में भारतीय शिक्षा के इतिहास में परिवर्तनकारी विचारक के रूप में नजर आते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण-जाति आधारित ब्राह्मण या सवर्ण पोषित परंपरा से जब दलित-मुक्ति का सपना देखा, तब उन्होंने चिन्तन परंपरा के अनेक

स्रोतों से स्वयं को संपन्न किया। डॉ. अम्बेडकर पर दो चिन्तकों का प्रभाव सबसे अधिक पडा। वे दो चिन्तक हैं- गौतम बुद्ध और ज्योतिबा फुले। डॉ. अम्बेडकर की नजर में बुद्ध सबसे बड़े क्रांतिकारी थे। बौद्ध दर्शन की प्रधान विशेषता- अनित्यवाद या अशाश्वतवाद के प्रभाव का ही असर है कि डॉ. अम्बेडकर ने जातिवाद, सांप्रदायिकता, सामन्तवाद, ब्राह्मणवाद और विषमता के खिलाफ जंग छेड़ी। डॉ. अम्बेडकर यदि सब कुछ सही मानते तो परिवर्तन या बदलाव की लड़ाई नहीं लड़ पाते। उनकी शिक्षा संबंधी समझ में तत्कालीन अनेक घटनाओं का प्रभाव पड़ा। एक घटना का जिक्र करना जरूरी है, जिसका अम्बेडकर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उस घटना का जिक्र इसलिए भी जरूरी है, ताकि तत्कालीन विचारकों और अम्बेडकर के बीच अंतर को भी हम भलीभांति समझ लें। बम्बई सरकार के इस आदेश के बाद कि सार्वजनिक स्कूलों में अछूत बच्चे भी प्रवेश के हकदार हैं, 8 अगस्त 1935 को बम्बई प्रेसिडेंसी के अहमदाबाद जनपद के कविठा गांव में अछूतों ने अपने चार बच्चों का स्कूल में प्रवेश करा दिया। इसे देखने के लिए सवर्ण हिन्दू स्कूल के चारों ओर जमा हो गए। जब दाखिला हो गया तो अगले कुछ दिन बाद हिन्दुओं ने अपने बच्चों को स्कूलों से हटा लिया। उसके कुछ दिन बाद गांव के अछूत मजिस्ट्रेट की कचहरी में शिकायत करने धोल्का पहुंचे। हिन्दुओं ने यह देखकर कि अछूतों के बालिग लोग घर पर नहीं हैं, लाठी, भालों और तलवारों से अछूतों के घर पर हमला कर दिया। धोल्का गए अछूत भी उसी रात घर लौटने वाले थे। हिन्दू उनको मारने के लिए भी घात लगाकर रास्ते में छिपकर बैठ गए। पर एक वृद्धा ने उन अछूतों को सूचित कर दिया था, जिससे वे उस रात न पहुंचकर तड़के गांव पहुंचे। हमलावर हिन्दू मध्य रात्रि तक उनकी प्रतीक्षा करते रहे और फिर अपने घरों की ओर लौट गए। आतंकित अछूत गांव छोड़कर अहमदाबाद चले गए और वहां जाकर गांधीजी की संस्था 'हरिजन सेवक संघ' के मंत्री को स्थिति से अवगत कराया, पर इस संस्था के मंत्री ने कुछ नहीं किया। उधर गांव के हिन्दुओं ने अछूतों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया। उन्हें मजदूरी देना बन्द कर दिया। खाने-पीने की चीजें बेचने से इनकार कर दिया, उनका घरों से निकलना दूभर कर दिया और उनके कुएं में मिट्टी का तेल डाल दिया। अंततः 17 अक्टूबर को अछूतों ने मजिस्ट्रेट के यहां फौजदारी का मुकदमा कर दिया। डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है कि इस मामले में सबसे अजीब पक्ष महात्मा गांधी और उनके सहयोगी वल्लभभाई पटेल का रहा, जिन्होंने अछूतों को यही सलाह दी कि वे गांव छोड़ दें। इस मामले में दलित सर्वथा असहाय थे, यह डॉ. अम्बेडकर ने महसूस किया।'[1] इस घटना का अम्बेडकर के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी चिंता के केंद्र में शिक्षा की वह अवधारणा परवान चढ़ी, जहां किसी तरह का भेदभाव न हो। उन्होंने बदलाव की बयार का जो सपना देखा उसकी भूमि ठोस सच्चाइयां थी, कोई जीवन-जगत विरोधी अमूर्त चिंतन नहीं।

परिवर्तन की यह अवधारणा 'जनशिक्षा' से जुड़ती है। उनके शैक्षिक विचारों का कैनवास बेहद विस्तृत है, जहां न सिर्फ दलित शिक्षा के सरोकार हैं, बल्कि स्त्री शिक्षा और शिक्षायी समझ के सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं में हस्तक्षेप की अवधारणा के सवाल भी दीगर हैं। उनके शैक्षिक सरोकारों को समझने के पहले यह जानना जरूरी है कि क्यों लेख के शीर्षक में उन्हें जनशिक्षा का पैरोकार कहा गया। दरअसल भारतीय शिक्षा को विशिष्टों की दुनिया से बाहर निकाल आम आदमी (अन्य शब्दों में दलित-शोषित और स्त्री संदर्भों) से संबद्ध करने का युगांतकारी आंदोलन 19वीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले द्वारा शुरू किया गया। डॉ. अम्बेडकर इस विरासत के स्वभाविक उत्तराधिकारी के रूप में शिक्षायी संसार में आए। इस अर्थ में उन्हें जनशिक्षा का पक्षधर विचारक कहना अतिशयोक्ति न होगा। प्रख्यात विचारक के. एस. चालम ने अपने उल्लेखनीय शोध 'दलित इमैनिसिपेशन थ्रू एजुकेशन' में उन्हें एक ऐसे विचारक के रूप में याद किया है, जिन्होंने अपने जीवनकाल का आधा समय शिक्षा की दुनिया में बिताया। इस दुनिया में उन्हें तीन रूपों में रेखांकित किया जा सकता है- विद्यार्थी, शिक्षक और शैक्षिक संस्थाओं के निर्माता के रूप में। वे आगे कहते हैं, 'जनशिक्षा के उत्तराधिकारी अम्बेडकर के शैक्षिक योगदान सामाजिक और राजनैतिक अवदान से कहीं अधिक मूल्यवान हैं। उनका मानना था कि शिक्षा किसी समुदाय के भविष्य निर्माण में वह स्थाई बदलाव संभव करती है, जिसकी गूंज बहुत दूर तक मौजूद रहती है। यही कारण है कि अम्बेडकर केवल बुद्धिजीवियों या कार्यकर्ताओं (एक्टिविस्ट) को आकर्षित नहीं करते बल्कि आज भी उनके अनुयायियों के ध्येय वाक्य के रूप में उनका यह आह्वान मौजूद है कि- 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'। यदि कोई उनके आंदोलन का अध्ययन

शैक्षिक, सामाजिक और राजनैतिक संदर्भों में विभाजित कर संपन्न करे, तब यह बात साफ तौर पर उभर कर आएगी कि उन्होंने अपने जीवन में समय, शक्ति और मेधा का अधिकांश हिस्सा शैक्षिक सरोकारों को समर्पित किया।'[2] एक ऐसे विचारक के रूप में डॉ. अम्बेडकर के मूल्यांकन के विविध संदर्भ हैं।

शिक्षा को दलित मुक्ति का आधार मानने वाले विचारक डॉ. अम्बेडकर की मानसिक निर्मितियों के मूल में जिन शिक्षाशास्त्रियों की अहम मौजूदगी रही, उनमें जॉन डिवी का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में जब डॉ. अम्बेडकर अध्ययन कर रहे थे, उस समय जॉन डिवी उनके अध्यापक थे। पहले अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा पत्र के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में डॉ. अम्बेडकर के दिलो-दिमाग पर जादू की तरह छा जाने वाले जॉन डिवी को उद्धृत करते हुए टिप्पणी की, 'मेरे वे सभी परिवर्तनकारी विचार जिनका रिश्ता सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों से संबद्ध है उनकी वैचारिक निर्मिति में जॉन डिवी की केन्द्रीय भूमिका है।'[3] एक शोधार्थी के रूप में अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन ने उन्हें एक प्रखर हस्तक्षेपधर्मी विचारक के रूप में उस समय रूपांतरित कर दिया, जब उन्होंने 1927 में मुंबई असेंबली में जन प्रतिनिधि के रूप में प्राथमिक शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय के संदर्भ में अपना मत रखा। उन्होंने अपने ऐतिहासिक संबोधन में कहा, 'मैं जोरदार तरीके से अपना यह मत रखता हूं कि प्राथमिक शिक्षा पर सरकार द्वारा किया जाने वाला व्यय नाकाफी है, और उसमें कम-से-कम इतनी बढ़ोतरी जरूर होनी चाहिए, जितना मद सरकार एक्साइज रेवेन्यू से प्राप्त करती है।'[4] कहना न होगा डॉ. अम्बेडकर का यह हस्तक्षेप उन्हें अर्थशास्त्री ही नहीं एक ऐसे शैक्षिक विचारक के रूप में स्थापित करता है, जिसकी चिंता जनशिक्षा है, न कि वह शिक्षा जो भारत में केवल सवर्ण समूह को संबोधित करती थी। वे भारत के पहले ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जिन्होंने बजट का आनुपातिक अध्ययन कर उसे शैक्षिक संदर्भों में किए जाने वाले व्यय से जोड़ा। उन्होंने 1916-17 से 1922-23 तक के मुम्बई प्रेसिडेंसी के वार्षिक बजट का गहन अध्ययन करते हुए बताया कि इस दरमियान सरकार महज चौदह आना प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष शिक्षा पर व्यय करती रही जबकि इसी दौरान एक्साइज ड्यूटी से वह प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष 2.17 रुपए प्राप्त करती रही। उनका यह तर्क आज भी भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के बजट प्रावधानों पर लागू होता है कि सरकारें प्रत्यक्षतः एक्साइज ड्यूटी से और अप्रत्यक्षतः अन्य करों से प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष जो मद प्राप्त कर रही है, उतना ही मद वह निर्धन (दलित-शोषित) लोगों की प्राथमिक शिक्षा पर नहीं खर्च कर पा रही है। प्राथमिक शिक्षा सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क हो, इसकी वकालत करते हुए उन्होंने यह भी कहा कि प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि कोई भी विद्यार्थी जो स्कूल में दाखिला लेता है, वह जब तक शिक्षित न हो जाए तब तक स्कूल न छोड़ सके, शिक्षित होने का अर्थ है, पूरे जीवन भर शिक्षित बने रहना। वे पहले अर्थशास्त्री हैं, जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा के ड्रॉप-आउट विद्यार्थियों का अध्ययन करते हुए बताया कि यह 82 प्रतिशत (1922-23 में) है।[5] शिक्षा में दिलचस्पी रखने वाले तत्कालीन चिंतकों के लिए यह तथ्य झकझोर देने वाला था। क्या यह संभव है कि उन्हें हर क्षेत्र का महान चिन्तक बताने के सीधे शब्दों में बस यही कहा जाए कि शिक्षा पर व्यय होने वाले मद के बारे में उन्होंने गहन अध्ययन करते हुए इस व्यय को बढ़ाने की बात की। और उस वक्त सरकार द्वारा एकत्रित किए गए रेवन्यू के संदर्भ में इसे व्याख्यायित करने की कोशिश की। बड़े-बड़े शब्दों से किसी विचारक से अभिभूत होने की गंध ज्यादा आती है बजाय उसका सही मूल्यांकन करने के। जैसे कि वे अर्थशास्त्री थे, दार्शनिक थे, ये थे वो थे इत्यादि।

इसी दरमियान उन्होंने शिक्षा के व्यावसायीकरण के घातक रूप की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया और आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए कहा कि शिक्षायी बजट का 31 से 36 प्रतिशत हिस्सा विद्यार्थियों से फीस के रूप में वसूला जाता है, जिसका सीधा असर उन बच्चों पर पड़ता है, जो समाज के शोषित-दलित और निर्धन तबके से है। उन्होंने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की ओर से दलित और शोषित तबके की शिक्षा के संदर्भ में एक स्मरण पत्र 1928 में शिक्षा आयोग को प्रस्तुत करते हुए हंटर कमीशन के समक्ष पेश किए गए उस स्मरण पत्र की याद दिलाई, जिसमें राज्य द्वारा दलितों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की मांग प्रस्तुत की गई थी। उन्होंने इसे समाज में व्याप्त असमानता का एक प्रमुख कारक बताते हुए कहा कि यह समाज में असमानता समाप्त करने का उपाय है। दलित समाज को यातनाएं दी गईं, उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से ही नहीं हर तरह से पंगु बना दिया गया। इसलिए

समय का तकाजा है कि सरकार उन्हें विशेष सहूलियतें प्रदान करे।[6] भविष्य के भारत निर्माण में गैर-बराबरी से लड़ने वाले और समानता के लिए संघर्ष करने वाले विचारकों के लिए अम्बेडकर की ये तार्किक और तथ्यपरक दलीलें बेहद मूल्यवान साबित हुईं। के. एस. चालम जैसे दलित शिक्षाविद् टिप्पणी करते हैं, 'मैं उनके तर्क से पूरी तरह सहमत हूं। भारत के अधिकांश दलित आज भी या तो शैक्षिक सहूलियतों के अभाव में शिक्षा प्राप्त नहीं करते या फिर महज स्कूली शिक्षा ही पूरी कर पाते हैं, उनके लिए उच्च शिक्षा असंभव ही रहती है। ऐसे में दलित-शोषित तबके के लिए सस्ती उच्च शिक्षा उपलब्ध हो यह व्यवस्था राज्य को उपलब्ध करानी चाहिए।[7] यदि किसी समाज का एक बड़ा हिस्सा वंचित तबके के अभिशाप तले जीवनयापन करे, तब उस समाज का जीवित रहना असंभव है। ऐसे में शिक्षा परिवर्तनकामी भूमिका निभाती है, जिसके लिए अम्बेडकर विशेष तौर पर सचेत रहे।

डॉ. अम्बेडकर ने विश्वविद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में गहन विचार किया और अनेक मूल्यवान निष्कर्ष दिए, जिनसे परिचित होना मौजूं होगा। उनकी नजर में विश्वविद्यालय विद्वान-विदुषियों का ऐसा केन्द्र होता है, जहां अग्र-गामिता (समग्र समाज को आगे ले जाने की संकल्पना) की राह उपलब्ध होती है और जहां ज्ञान का प्रसार होता है। उन्होंने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में चार गुणों के अनिवार्यतः मौजूद रहने की बात की और इसे शिक्षा के लक्ष्यों के तौर पर, हालांकि संदर्भ उच्च शिक्षा का है, देखा जा सकता है। इन लक्ष्यों की जड़ें आधुनिक लोकतंत्र एवं समानता के मूल्यों के अनुरूप हैं और ये शिक्षा के अधुनातन शैक्षिक विमर्श के दस्तावेज राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 से भी संगति रखते हैं:

- उनमें असमानता के मुद्दे और स्वाधीन चेतना के पक्ष में सवाल उठाने की ऐसी योग्यता का अभ्यास होना चाहिए, जिस पर किसी मोहग्रस्त सिद्धान्त की छाप न हो।
- राज्य की ऐसी नीतियां, जिनके चलते कोई समूह पीछे छूट जाता हो, उनके बारे में बिना लाग-लपेट के विचार प्रकट करने की योग्यता और प्रतिगामी ताकतों के पुरजोर विरोध की समझ होनी चाहिए।
- किसी विचार के स्वीकार या अस्वीकार करने के ठोस तर्क की काबिलियत होनी चाहिए।
- उन्हें उस स्वाधीन चेतना के विकास की योग्यता पैदा करना चाहिए जिसके अंतर्गत कोई विद्यार्थी किसी विषय के मूल्यांकन, परीक्षण और स्व-अर्जित मूल्यों के आलोक में एक चिंतक के रूप में रूपांतरित हो सके।[8]

आज के भारत के शिक्षा संबंधी विमर्शों में इन सवालों से रू-ब-रू हुए बिना शिक्षा नीति की कोई समग्र अवधारणा हासिल नहीं की जा सकती। ये वे मूल्य हैं जिन पर अभी बेहद विस्तार से काम करने की जरूरत है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने समय में इन मानकों के आधार पर मुम्बई विश्वविद्यालय की आलोचना की। उन्होंने मुम्बई प्रेसिडेंसी सभा में विश्वविद्यालय के तत्कालीन स्वरूप पर सवाल उठाए, जिसका प्रभाव पहले मुम्बई विशवविद्यालय संशोधित अधिनियम पर पड़ा। फिर सरकार द्वारा गठित विश्वविद्यालय पुनर्गठन आयोग (1925 में) पर भी उनके विचारों की अनुगूंज सुनाई पड़ी। उनकी नजर में विश्वविद्यालय महज परीक्षा संचालन केन्द्र नहीं होता, वह दरअसल एक ऐसा ज्ञान केन्द्र होता है, जो समाज के सभी तबके के लिए योग्यता विकास के समान अवसर उपलब्ध कराता है। उन्होंने महाविद्यालयों में विश्वविद्यालयी अध्यापक-अध्यापिकाओं (प्रोफेसरों) के पढ़ाने और अनुभव अर्जित करने की वकालत की। वे भारत के पहले शिक्षाविद् हैं जिन्होंने अकादमिक मामलों में 'विश्वविद्यालय विद्वत परिषद्' (academic council) को संपूर्ण अधिकार देने की बात की। उन्होंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक और प्रशासनिक पदों पर अध्यापकों की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा। उन्होंने अपने विचारों के आलोक में सरकार को एक समग्र और हस्तक्षेपधर्मी विश्वविद्यालयी शिक्षा का प्रस्ताव रखा। 1926 में उन्होंने कराची समेत देश के अन्य भागों में दस विश्वविद्यालयों के गठन का प्रस्ताव रखा। विश्वविद्यालयों में विभिन्न स्कूलों (अध्ययन पीठों) के गठन की अवधारणा पहली मर्तबा डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत की। यह विचार उन्होंने मुम्बई विश्वविद्यालय के पुनर्गठन के दौरान प्रस्तुत किया, जिसके आलोक में वहां विभिन्न स्कूल बने।

स्त्री शिक्षा के संदर्भ में उनकी राय स्पष्ट थी। एक ऐसे समाज में जहां दलितों और स्त्री के लिए शिक्षा का द्वार बंद

हों, वहां अम्बेडकर का यह कहना मायने रखता है कि शिक्षा जितनी लड़कों के लिए जरूरी है, उतनी ही लड़कियों के लिए भी। वे पुरुषों की अपेक्षा स्त्री शिक्षा पर अधिक बल देते हुए कहते थे, 'एक पुरुष के शिक्षित होने का अर्थ है अकेले शिक्षित होना, जबकि एक स्त्री के शिक्षित होने का अर्थ है पूरे परिवार का शिक्षित होना।' वे लड़के और लड़कियों के लिए समान शिक्षा के पक्षधर थे।

एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने उन विचारों पर अमल किया जिसकी उन्होंने शिक्षा दी। अपने संदेशों को व्यापक जन तक पहुंचाने के उद्देश्य से उन्होंने 'जन शिक्षा समूह' (People's Education Society) का गठन किया। इस समूह ने अनेक शिक्षायी संस्थानों का गठन किया। संस्थानों की शिक्षा का दायरा बेहद व्यापक था, जिसके अंतर्गत विभिन्न अनुशासनों के अध्ययन की अवधारणा ने आकार लिया। इनमें सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स, सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ लॉ जैसे संस्थान उल्लेखनीय हैं। एक उल्लेखनीय शिक्षाविद् के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षायी इतिहास के एक बेहद महत्त्वपूर्ण बिंदु की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया, उन्होंने कहा, '1855 में अहमदनगर में अस्पृश्यों की शिक्षा की अवधारणा वजूद में आई और 1956 में धारवाड़ में एक अस्पृश्य ने उसे व्यापक स्तर पर आकार दिया। उन्होंने ब्रितानी हुकूमत की शिक्षा पद्धति और ब्राह्मण शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए कहा कि इन दोनों पद्धतियों ने शिक्षा को सवर्णों तक या तो सीमित किया या तरजीह दी। उन्होंने पहली मर्तबा दलित समुदाय के लिए छात्रावास और स्कॉलरशिप के प्रावधानों की बात की। उन्होंने पहली बार लेबर पार्टी के चुनावी मेनिफेस्टो में दलितों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की बात की। इस तरह भारत में पहली बार किसी पार्टी ने शिक्षा को अपने मेनिफेस्टो में स्थान दिया।'[9] उनके सपनों को उस वक्त एक मजबूत आधार मिला, जब भारत के संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 45 को शामिल कर सबके लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के प्रावधानों को संवैधानिक हक की पैरवी की।

असल में डॉ. अम्बेडकर दलित और स्त्री शिक्षा के लक्ष्य को लोकतंत्र के माध्यम से पूरा करना चाहते थे, जिससे लोकतंत्र के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिदृश्य में दलितों की भागीदारी अनिवार्यतः सुनिश्चित हो। स्वयं उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि कैसे शिक्षा एक परिवर्तनकारी विचारक को संभव करती है, जिसने सही अर्थों में जनशिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत की और उसे हासिल करने के लक्ष्य सुनिश्चित किए। ◆

## संदर्भ


1. साहित्य उपक्रम, फरवरी 2002, दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती पृ. सं. 62-63
2. Dalit Emancipation through Education & Ambedakar in Retrospect, Ed. Sukhdev Throat, first edition 2007, p. 343
3. वही, p. 343
4. M. S. Gore, The Social Contect of an Idiology, p. 209
5. Vasant Moon, Ed. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, voi. 2, Government of Maharashtra, 1987, p. 461, The Social Context of an Idiology, p. 39-40
6. वही, p. 39-40
7. Dalit Emancipation through Education- Ambedakar in Retrospect, Ed. Sukhdev Throat, first edition 2007, p. 347
8. Vasant Moon, ed. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, voi. 2 , Government of Maharashtra, 1987, p. 461, The Social Context of an Idiology, p. 42
9. Dalit Emancipation through Education- Ambedakar in Retrospect, Ed. Sukhdev Throat, first edition 2007, p. 349